RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 48, अंक : 10 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 20 जून, 2021

विक्रमी सम्वत् 2078, सृष्टि सम्वत् 1960853122

दयानन्दाब्द : 197 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–48, अंक : 10, 17-20 जून 2021 तदनुसार 6 आषाढ़, सम्वत् 2078 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

शरीर-याग

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान् किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात।।

-ऋ० ७।९०।४

शब्दार्थ-हे **देव** = कमनीय! अथवा कामनाक्रान्त जीव! तू **स्वयम्** = अपने-आप **दिवि** = मस्तिष्क में विद्यमान **देवान्** = देवों को, इन्द्रियों को, दिव्य भावों को **यजस्व** = मिल, प्रेर, संगत कर। **अप्रचेताः** = मूढ़, अचेत **पाकः** = परिपक्व, पवित्र **ते** = तेरा **किं** = क्या **कृणवत्** = कर सकता है। **यथा** = जैसे तू **ऋतुभिः** = ऋतुओं के अनुसार **देवान्** = देवों को **अयजः** = संगत करता है **एवा** = ऐसे ही, हे **सुजात** = सुकुल! कुलीन! उत्तम! **देव** = देव! **तन्वं** = शरीर को **यजस्व** = संगत कर!

व्याख्या-इस मन्त्र में कई धारणीय तत्त्व हैं-

(१) देव = इन्द्रियाँ **द्युलोक** = मस्तिष्क में रहती हैं। यह शरीर ब्रह्माण्ड का एक संक्षिप्त सार है। ब्रह्माण्ड में त्रिलोकी है-द्यौ, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी। द्यौ में सूर्य, चन्द्र, तारे आदि प्रकाशपिण्ड रहते हैं। अन्तरिक्ष में वायु आदि हैं। पृथिवी सबका आयतन है। शरीर में मस्तिष्क=शिरोभाग द्यौ है। आत्मा को बाहर के पदार्थों का ज्ञान पहुँचाने वाले आँख, नाक, कान, रसना, स्पर्श इन्द्रिय-सब देव यहीं रहते हैं। शरीर का मध्य भाग अन्तरिक्ष है। अधो भाग पृथिवी है।

(२) इनसे तुझे स्वयं संगत होना होगा, किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं करनी होगी। मेरी आँख से मैं ही देखूँगा, दूसरा कोई भी मेरी आँख द्वारा नहीं देख सकता। मेरे कान से मैं ही सुन सकता हूँ, महाश्रवणशक्ति सम्पन्न होता हुआ भी दूसरा नहीं सुन सकता। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों की दशा समझ लेनी चाहिए। जैसे इनसे मैं ही कार्य ले-सकता हूँ, ऐसे ही इनके द्वारा प्राप्त होने वाले सुख-दु:ख का भागी तथा भोगी भी मैं ही बनूँगा।

(३) अप्रचेताः = मूढ़ अज्ञानी किसी का कुछ सँवार नहीं सकता। पवित्रता के साथ ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है।

(४) ऋतु-ऋतु में उस-उस ऋतु के अनुसार यज्ञ करने चाहिए। गोपथब्राह्मण में ऐसे यज्ञों को भैषज्य यज्ञ कहा गया है। इनसे अपना-पराया स्वास्थ्य बिगड़ने नहीं पाता।

(५) जैसे देवयज्ञ करना आवश्यक है, वैसे शरीर-याग [यजस्व तन्वम्] भी आवश्यक है।

वेद सभी मनुष्यों के लिए है, किन्तु आज तो 'यजस्व तन्वम्' उपदेश भारतीयों के लिए अत्यन्त उपादेय है। वेद शरीर की उपेक्षा का उपदेश नहीं करता। यज्ञ वैदिक धर्म का प्राण है। यहाँ शरीर-याग करने का विधान है, अर्थात् शरीर निन्दनीय नहीं है। यजुर्वेद में कहा है-

इयं ते यज्ञिया तनूः।

-यजु:० ४।१३

यह तेरा तन यज्ञ करने योग्य है, पूजनीय परमात्मा से मिलाने का साधन है। कौन मूढ़ ऐसे अमूल्य रत्न को सँभालकर न रखेगा?

भवसागर पार करने को यह शरीर नौका है। नौका को बिगाड़ दोगे, उसमें छिद्र करोगे तो आप ही डूबोगे, लक्ष्य पर न पहुँचोगे, इसी संसार-सागर में गोते खाते रहोगे, अत: तरणि को सुरक्षित रखो, इसी से वेद कहता है-**यजस्व तन्वम्।** जैसा कि ऊपर यजुर्वेद के प्रमाण से बताया जा चुका है कि यह मानव तन पूजनीय परमात्मा से मिलने का साधन है। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि शरीर का वेद की दृष्टि में कितना महत्त्व है। परमात्मा से मिलने-मिलाने की बात छोड़ भी दी जाए, तो भी मानव-शरीर का महत्त्व न्यून नहीं होता। वाचाशक्ति और किस शरीर में है? सांसारिक जीवन की सुख-सुविधा इसी देह पर अवलम्बित है। रुग्ण देहवाला मनुष्य अपने परिवार को भी भार प्रतीत होता है, अपनी क्रिया भली-भाँति नहीं कर सकता, इस हेतु अथर्ववेद में कहा गया है-**'स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज'** अपने देह में अनमीवा-रोगरहित विराजमान हो, अर्थात् आहार-विहार ऐसा रखो, जिससे किसी प्रकार का रोग शरीर पर आक्रमण न करे। शरीर पर रोग अपथ्य, मिथ्याहार-विहार, अशुद्ध उपचार से आते हैं। यदि खान-पान, शयन-आसन आदि में नियमितता एवं संयम रखा जाए तो रोग होने का कोई हेतु नहीं। इस पर भी यदि शरीर रुग्ण हो जाए, तो समझ लीजिए, पूर्वजन्म की असावधानता का परिणाम है। इसे समझने का फल यह होना चाहिए कि मनुष्य अधिक सावधान हो जाए। पूर्वजन्म की बात से अगले जन्म का विचार करे। पूर्वजन्म के विचार, आचार, व्यवहार के आधार पर हमारा वर्त्तमान देह बना है। इसी भाँति इस जन्म के आहार, व्यवहार, विहार के अनुसार उत्पन्न संस्कार भावी जन्म के हेतु बनेंगे।

यहाँ एक बात और विस्मरण नहीं करनी चाहिए कि विचारों का शरीर पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, अत: शरीरयाग के लिए विचारों की पवित्रता नितान्त प्रयोजनीय है। शरीर हृष्ट-पुष्ट है, किन्तु विचार अपवित्र हैं तो शरीर-याग नहीं हुआ, इसका सङ्केत-**'किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः'** में है। मनन कीजिए। आत्मा को सम्बोधन करते हुए 'देव' तथा 'सुजात' शब्द कहे गये हैं। ये दोनों विशेषण महत्त्व के हैं। 'देव' दिव्य भावों वाले को कहते हैं, अर्थात् हे जीव! तेरी नैसर्गिक प्रकृति तो देवत्व है, अज्ञान से तू असुर भावों में फँस जाता है, अत: अपना स्वरूप पहचान। नि:सन्देह नेत्र आदि महादेव तेरे साथी हैं, किन्तु अप्रचेता=जड़, अत: तेरा कुछ नहीं सँवार सकते। तू उनसे ऊपर उठ और अपने ऊपर भरोसा करके देवयज्ञ कर, शरीरयाग कर, यज्ञ हो और देवयज्ञ हो, तभी कल्याण होगा। **(स्वाध्याय संदोह से साभार)**

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर विशेष

ले.-डा. सत्यदेव 507-गोदावरी ब्लाक, अशोका सिटी कृष्णा नगर-मथुरा

वैदिक काल में मन इन्द्रियों को वश में करके आत्म-साक्षात्कार करने की इच्छा का इतना अधिक महत्व था कि पाँच वर्ष का छोटा सा बालक जब गुरुकुल में पढ़ने जाता था, तब से ही आचार्य या गुरु उसे प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में उठाकर, एकान्त-शान्त स्थान में बिठाकर, आसन लगवाकर, आँखें बन्द कराकर, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि लगाने जैसी सूक्ष्म क्रियायें सिखाना प्रारम्भ कर देता था, जैसे कि ऋषि-मुनि लोग स्वयं क्रिया करते थे और यह क्रिया मृत्यु पर्यन्त चलती रहती थी, चाहे वह अभ्यासी किसी भी आश्रम का क्यों न हो, किसी भी व्यवसाय को क्यों न करता हों।

योग दर्शन में इस क्रिया को ''योग'' या समाधि या उपासना नाम से कहा गया है। जीवात्मा चेतन है, ज्ञानी है, कर्ता है और मन आदि जड़ पदार्थों का चालक है। जो मनुष्य अपने मन को समस्त सांसारिक विषयों से हटाकर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य, निराकार, पवित्र तथा आनन्द स्वरूप परमेश्वर में स्थित कर लेता है, वह समस्त शारीरिक व मानसिक दु:खों से रहित हो जाता है और ईश्वर से ज्ञान, बल, आनन्द, निर्भयता, स्वतन्त्रता आदि गुणों को प्राप्त करता है। यही योग साधना का फल है।

इसी योगाभ्यास से ही व्यक्ति या साधक अपने मन पर पूर्ण नियन्त्रण करके, जिस विषय पर मन को लगाना चाहता है, लगा देता है और जिस विषय से मन को हटाना चाहता है वह साधक हटा लेता है। मन को नियन्त्रण में करने से ही वह प्रसन्न रहता है। योगाभ्यासी साधक की एकाग्रता बढ़ती है, स्मृति-शक्ति विकसित होती है तथा बुद्धि सूक्ष्म होती है। इन सब अभ्यन्तर सम्पत्तियों से उसके सारे कार्य सफल होते हैं।

योगदर्शन में ''योग'' शब्द की परिभाषा ''चित्त वृत्तिनिरोध'' कहकर की गई है। इसका यह अर्थ हुआ कि योग वह विज्ञान है, जो हमारे चित/मन को परिवर्तनशील अवस्था से निरुद्धकर, उसे वश में करने की शिक्षा देता है। चित्त वह वस्तु है जिससे हमारे मन का निर्माण होता है और जो निरन्तर बाह्य तथा आन्तरिक प्रभावों से प्रमथित होकर (संकल्प-विकल्प की) तरंगें उछालता रहता है। योग हमें सिखाता है कि ''मन'' का किस प्रकार नियमन किया जाये, जिससे कि वह सन्तुलन खोकर तरंगित न होने पाये।

परम योग-साधक श्री बी.के.एस. आयंगर ने बताया है, कि योग में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक परिवर्तन की शक्ति तो है ही, उसके अपने व्यक्तिगत सांस्कृतिक स्तर और पूरे समाज के सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने की क्षमता भी है। इसीलिए तो यह योग-शास्त्र/योगविद्या मानवजाति के लिए वरदान है। विगत पचास-साठ वर्षों में इसके सम्बन्ध में बहुत उत्सुकता और जिज्ञासा जागी है, उत्पन्न हुई है। यह योग-दीप पुन: एक बार जल उठा है। मन, बुद्धि, अहम् और चित्त की सामर्थ्य मनुष्य की विशेषता है। वह अपनी पाँचों इन्द्रियों के द्वारा प्रकृति और बाह्य घटनाओं का अवलोकन कर सकता है और उन्हें आत्मसात भी कर सकता है। इसके कारण उसमें अलग-अलग प्रकार की अच्छी-बुरी वृत्तियाँ प्रकट होती है। इसका परिणाम यह भी होता हैं कि कई बार मनुष्य सत् और असत् को जानने की अपनी शक्ति का उपयोग न करके कुछ अन्य व्यवहार कर जाता है। ऐसी स्थिति में सुख या दु:ख पैदा होता है। गलत वृत्तियाँ हमेशा प्रभावशाली होती हैं। योग इनसे ऊपर उठने का मार्ग दिखा सकता है।

''लैटर्स ऑन योगा'' के अन्तर्गत महर्षि श्री अरविन्द ने लिखा है कि यह संसार एक स्वप्न जैसा है, माया स्वरूप है और मृगमरीचिका की भाँति है। इस संसार में संलिप्त होने की कच्चित् आवश्यकता नहीं है। योग ही सामाजिक जीवन का आधार और अनिवार्य शर्त है। योग की सहायता से सामाजिक जीवन को अधिक सफल बनाया जा सकता है। श्री अरविन्द के अनुसार योग के मायने सामाजिक जीवन से भागना नहीं है, अपितु जीवन-मृत्यु के बन्धनों से मुक्ति पाना है। योग जीवन और शरीर दोनों को भौतिकता से ऊपर उठाता है। इस तरह से व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर श्रेष्ठ बन जाता है। योग व्यक्ति में छिपी हुई शक्तियों द्वारा विधि और नियमानुसार आत्म-पूर्णता की ओर प्रयास करना है तथा व्यक्ति को संसार की सीमा से ऊपर उठाकर जीवन में एक्य स्थापित करना है।

स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक का मत है कि योग का प्रत्येक व्यक्ति के साथ सम्बन्ध है, चाहे वह किसी जाति, धर्म या सम्प्रदाय का क्यों न हो। प्रत्येक व्यक्ति सदा दु:खों से छुटकारा पाकर नित्यानन्द प्राप्त करना चाहता है, परन्तु ऐसा आनन्द योग के बिना सम्भव नहीं है, अत: व्यक्ति के लिए योग करना/कराना अनिवार्य है। चाहे पाँच या आठ वर्ष का बालक हो चाहे युवा हो और चाहे वृद्ध हो, स्त्री हो अथवा पुरुष हो, प्रत्येक अवस्था में, प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति का आधार योग ही है।

व्यवसाय की दृष्टि से ही प्रत्येक मनुष्य के साथ योग का सीधा सम्बन्ध है। चाहे कोई खेती करने वाला किसान हो, चिकित्सक हो अथवा किसी प्रकार का व्यापार करने वाला हो। समस्त व्यवसायों में योगाभ्यास मनुष्य मात्र को सफलता प्रदान करता है, क्योंकि अविद्या, असत्याचरण, मिथ्या-उपासना और सभी दु:खों का विनाश तथा विद्या, सत्याचरण, सन्ध्योपासना और ईश्वर के नित्यानन्द की प्राप्ति योग से ही होती है।

योग का किसी देश या सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति योग के माध्यम से अपने जीवन को उन्नत बना सकता है, इसमें किसी भी प्रकार की बाधा नहीं है। हाँ, यह दूसरी बात है कि योग के आठ अंगों का आचरण किये बिना कोई भी मनुष्य वास्तविक योगी नहीं बन सकता और वास्तविक योगी बने बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता तथा ईश्वर साक्षात्कार के बिना मनुष्य-जीवन सफल नहीं होता। वर्तमान काल के कुछ दशकों में विश्व के अनेक देशों में योग का प्रचुरमात्रा में प्रचार-प्रसार हुआ है, बहुत सा साहित्य भी विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित किया गया है। अब तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी योग की एक अलग पहचान बन गई है, यही कारण है कि 21 जून को हर वर्ष ''अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस'' एक समारोह/उत्सव के रूप में मनाया जाने लगा है। इस समय योग के अनेक नाम प्रचलित हैं, जैसे-राजयोग, सहज योग, ज्ञान योग, कर्म योग, हठ योग, ध्यान योग, जप योग आदि-आदि। वास्तव में जिस योग से ब्रह्म की प्राप्ति अथवा मोक्ष व मुक्ति व अपवर्ग की प्राप्ति होती है और सभी दु:खों का नाश तथा नित्यानन्द मिलता है, ऐसा योग तो एक ही है, अनेक नहीं हाँ, उसके नाम अनेक हो सकते हैं, जैसे कि ईश्वर एक ही है और उसके नाम अनेक हैं।

''योग'' शब्द से अनेक अर्थ लिये जा सकते है, परन्तु यहाँ पर उन अनेक अर्थों पर विचार करना सम्भव नहीं है। अत: यहाँ पर उसी योग की बात की जा रही हैं, जो वैदिक है और जिसका आचरण आदिकाल से ऋषि-मुनि करते आये हैं या करवाते आये हैं। इसी का दूसरा नाम ''पातंजल योग'' भी है, जो महर्षि पतन्जलि द्वारा प्रतिष्ठापित किया गया है। वे कहते हैं-

''योगश्चित्तवृत्ति निरोध''

-(योग दर्शन 1/2)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोक देना ''योग'' है। इसी का दूसरा नाम समाधियोग भी है। चित्त में नाना प्रकार की वृत्तियाँ/तंरगें उठती रहती हैं, उनको वृत्ति बाह्य-व्यवहार कहते हैं। चित्त की सभी वृत्तियों की परिगणना करना अत्यन्त कठिन है। चित्त वृत्तियों को एक दृष्टि से देखा जाये तो दो विभागों में बाँट सकते हैं, एक तो ''क्लिष्ट'' और दूसरी ''अक्लिष्ट''। जो वृत्तियाँ क्लेशों को अथवा दु:खों को उत्पन्न करती हैं और अज्ञान की ओर ले जाती हैं, वे क्लिष्ट वृत्तियाँ होती हैं तथा जो सुख को उत्पन्न करती हैं और ज्ञान की ओर ले जाती हैं, वे अक्लिष्ट वृत्तियाँ होती हैं। यदि वृत्तियों को ज्ञान की दृष्टि से देखा जाये तो इन्हें पाँच भागों में बाँटा जा सकता हैं। वे पाँच भाग इस प्रकार हैं-1. प्रमाण, 2. विपर्यय, 3. विकल्प, 4. निद्रा और 5. स्मृति। इन वृत्तियों को रोकने से ही योग की सिद्धि होती हैं। योग के मुख्य रूप से दो भेद हैं-एक सम्प्रज्ञात और दूसरा असम्प्रज्ञात सम्प्रज्ञात योग को सबीज समाधि, सम्प्रज्ञात समाधि तथा चित्त की एकाग्रता भी कहते हैं और असम्प्रज्ञात योग को निर्बीज-समाधि, असम्प्रज्ञात समाधि तथा चित्त की निरुद्धावस्था भी कहते हैं। संक्षेपत: योग का अर्थ-आत्मा और परमात्मा का योग है।

''योग के आठ अंग होते हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान और 8. समाधि। जो व्यक्ति या साधक मन, वचन और शरीर से इन आठ अंगों का पालन करता है, वह अपने जीवन में पूर्णरूपेण सफल हो जाता है। योग के इन आठ अंगों के आचरण को छोड़कर मानव-जीवन

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

21 जून अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस प्रत्येक वर्ष 21 जून को मनाया जाता है। भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने इस दिन को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का प्रस्ताव दिया था। उन्होंने सितम्बर 2014 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में अपने भाषण के दौरान योग दिवस के सुझाव का प्रस्ताव दिया था। संयुक्त राष्ट्र महासभा के सदस्यों ने इस प्रस्ताव पर पर्याप्त विचार विमर्श किया और जल्द ही इसके लिए सकारात्मक मंजूरी दे दी। 21 जून 2015 का दिन पहला अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस था। इस दिन हमारी महान् ऋषि मुनियों की विरासत को पूरे विश्व में एक नई पहचान मिली थी। तब से 21 जून के दिन प्रतिवर्ष योग दिवस मनाया जाता है। 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में निश्चित करने के पीछे यह कारण भी था कि 21 जून उत्तरी गोलार्द्ध में वर्ष का सबसे बड़ा दिन होता है।

योग मन, शरीर और आत्मा को सक्षम बनाता है। योग से मनुष्य की शारीरिक और आत्मिक शक्तियों का विकास होता है। योग करने से मनुष्य को आत्मिक शान्ति की अनुभूति होती है। प्रतिदिन योग करने वाला मनुष्य शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है। कोई भी शारीरिक व्याधि योगी मनुष्य को पीड़ित नहीं करती और मानसिक व्याधि का भी उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं होता है। योग करने वाले मनुष्य के अन्दर हमेशा सकारात्मक विचारों का प्राबल्य रहता है। वह कभी भी तनाव और अवसाद से ग्रसित नहीं होता। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि कुवासनाएं उसके समीप आकर भस्म हो जाती है। जिस प्रकार अग्नि में तपकर सोना कुन्दन बन जाता है, उसी प्रकार योग की भट्ठी में तपकर मनुष्य के व्यक्तित्व में निखार आता है। उसके चेहरे पर हमेशा ओज और तेज रहता है, मुख हमेशा प्रसन्नवदन रहता है। योगी के जीवन में कभी भी निराशा का संचार नहीं होता है।

महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि योग के आठ अंग बताए है। क्रमशः एक-एक सीढ़ी चढ़ने से ही सिद्धि को प्राप्त किया जा सकता है। योग का मुख्य उद्देश्य चित्त की एकाग्रता द्वारा आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास करना और आत्म साक्षात् द्वारा परम आत्मा तक पहुंचना है। किन्तु जो मन, बुद्धि तथा आत्मा का निवास स्थान है, जो भगवान् का साक्षात् मन्दिर है, वह हमारा शरीर यदि बलवान और स्वस्थ नहीं तो न ही हम अपनी शक्तियों का विकास कर सकते हैं, और न ही परम आत्मा परमेश्वर का दर्शन। वेद में भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! हम सुदृढ़ अंगों वाले तेरी स्तुति करने वाले हों। उपनिषदों में भी शारीरिक बल के बिना आत्म दर्शन को असम्भव बताया है-**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः** अर्थात् यह आत्मा बलहीन कमजोर मनुष्य को प्राप्त नहीं होता। अतः योग जहां आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक उन्नति का उपाय बताता है, वहाँ शारीरिक उन्नति का भी सर्वोत्तम तथा अचूक उपाय हमारे सामने रखता है।

योग तथा प्राणायाम का उद्देश्य केवल मनुष्य को स्वस्थ, बलवान एवं चिरायु बनाना ही नहीं है, अपितु मनुष्य की मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास करना भी है। हमारे शरीर में पांच कोश तथा आठ चक्र हैं। इन कोशों के भीतर प्रवेश करने से जहां आत्मिक शक्तियों का विकास होता है, वहां चक्रों को जागृत करने से मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास होता है। ये चक्र संख्या में आठ हैं, जैसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा तथा ब्रह्मरन्ध्र। मूलाधार-गुदा के पास, स्वाधिष्ठान-मूलाधार से चार अंगुल ऊपर, मणिपूरक-नाभि स्थान में, सूर्य-पेट के ऊपर रीड़ की हड्डी के दोनों ओर, अनाहत-हृदय में विशुद्धि कण्ठ में, आज्ञा चक्र-भृकुटि में, तथा ब्रह्मरन्ध्र-ललाट के ऊपर है। योग ग्रन्थों में इन चक्रों के सम्बन्ध में बहुत वर्णन किया गया है।

हमारे समस्त शरीर में ज्ञानतन्तु जाल के समान फैले हुए हैं। यही ज्ञानतन्तु हमें रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का ज्ञान कराते हैं तथा अनेक शारीरिक और मानसिक शक्तियों के आधार हैं। ये ज्ञानतन्तु हमारे शरीर रूपी नगर में, सड़कों के समान अथवा देहरूपी राष्ट्र में रेल की लाईनों के समान फैले हुए हैं। जैसे शहर में सड़कों के अनेक केन्द्र होते हैं, जहां पर कई सड़कें आकर मिलती हैं उसी प्रकार हमारे शरीर में भी प्रत्येक विषय के ज्ञानतन्तुओं के केन्द्र हैं। जहां पर उस-उस विषय के ज्ञानतन्तु आकर मिलते हैं। उन्हीं ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों का नाम चक्र है। इन चक्रों में अनेक शारीरिक तथा मानसिक दैवी शक्तियां निहित हैं, जोकि इन चक्रों के जागृत करने से ही प्रकट होती हैं। उन्हीं दिव्य शक्तियों को आजकल के योगियों ने ब्रह्मा आदि देवताओं का स्वरूप दे दिया है। जिस मनुष्य का जिस विषय का चक्र जागृत होता है, उसके ज्ञानतन्तुओं के जागृत होने से उन-उन ज्ञानतन्तुओं से सम्बन्धित समस्त शारीरिक तथा मानसिक दिव्य शक्तियां भी जागृत हो जाती हैं। इन्हीं षट् चक्रों को आधुनिक साईंस वालों ने हारमोन्स के नाम से कहा है और इन मूलाधार आदि चक्रों के उन्होंने अपनी परिभाषा में निम्न नाम रखे हैं- प्रोस्टेट, ऑवेरियन, एडेनेलिन, पेनक्रियास, थाइराइड, थाइमॉस और पियूटरी ग्लैण्ड। इन ग्लैण्ड्स के आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने जो-जो प्रभाव शरीर, मन और आत्मा पर बताए हैं वैसे ही प्रभाव हठयोगियों ने भी षट चक्रों की जागृति के बताए हैं।

इन सभी ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों अर्थात् मूलाधार आदि चक्रों को जागृत करने का मुख्य साधन प्राणायाम ही है। प्राणायाम का पूर्ण अभ्यासी जिस चक्र को जागृत करना चाहता है उसमें प्राणायाम के द्वारा प्राणों को केन्द्रित कर उस चक्र को जागृत कर लेता है। योगियों की अनेक प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के, जिन्हें कि हम सिद्धियों के नाम से पुकारते हैं, उनके विकसित होने का रहस्य भी प्राणायाम ही है। ।

महर्षि चरक अपने ग्रन्थ में सुखी जीवन के लक्षण बताते हुए लिखते हैं- **जिस मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रोग नहीं सताते, जो विशेषकर यौवनावस्था में सब प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकारों से रहित है, जिसका बल, वीर्य, यश, पौरूष और पराक्रम सामर्थ्य तथा इच्छा के अनुरूप है, जिसका शरीर नाना प्रकार की विद्याओं, कला कौशल आदि विज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ है, जिसकी इन्द्रियां स्वस्थ, बलवान् और इन्द्रियजन्य भोगों को भोगने में समर्थ है, जिसके शरीर में किसी प्रकार की निर्बलता नहीं, उसका जीवन वास्तव में सुखी जीवन है।**

प्रतिवर्ष 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है। योग दिवस को आज विश्व में एक नई पहचान मिल चुकी है। विश्व के कई देशों में बड़े उत्साह के साथ योग दिवस का आयोजन किया जाता है। पूरा विश्व हमारे ऋषि-मुनियों की विरासत को आगे बढ़ा रहा है। यह हमारे लिए गौरव की बात है। वैदिक संस्कृति सार्वभौम संस्कृति है। इसमें **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया** की भावना निहित है। इसी प्रकार हमारा लक्ष्य **वसुधैव कुटुम्बकम्** की भावना को सम्पूर्ण विश्व में साकार करना है। इसीलिए योग दिवस को अपने जीवन का आवश्यक अंग बनाएं। प्रतिदिन योग व प्राणायाम करें। अपने आपको शारीरिक तथा मानसिक व्याधियों से मुक्त करें।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

सत्य तथा उसके अवरोधक

ले.-इन्द्रजित् देव चूना भट्ठियां, सिटी सैन्टर के निकट, यमुनानगर १३५००१

संसार में सबसे कम अल्पसंख्यक व्यक्ति वे होते हैं जो सत्यप्रिय होते हैं। सत्य होता तो सबके लिए है परन्तु अधिकतर लोग उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते। न ही उसकी रक्षा व प्रचार-प्रसार में क्रियात्मक कुछ करते हैं। जिस दिन सब लोग सत्य की आवश्यकता तथा इसके लाभों को गहराई से अनुभव कर लेंगे, उसी दिन सुख व शान्ति के साम्राज्य की स्थापना हो जाएगी परन्तु इस दृढ़ सत्य के बावजूद सत्य की स्थापना अधिकांशत: नहीं हो रही। यह क्यों नहीं हो रही, इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' में सुस्पष्ट प्रकाश डाला है। वे इस ग्रन्थ की भूमिका में लिख गए हैं-

''जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।''

महर्षि ने सत्य को ग्रहण न करने के चार कारण लिखे हैं-अपने प्रयोजन अर्थात् स्वार्थ की सिद्धि, हठ अर्थात् अपने विचार पर ही दृढ़ बने रहना, दुराग्रह अर्थात् अपने मत के ठीक सिद्ध न होने पर भी उसी पर अड़े रहना तथा अविद्या अर्थात् शिक्षा आदि के द्वारा न उपार्जित या अप्राप्त ज्ञान। इन चारों में से कोई एक-न-एक कारण अवश्य उन लोगों पर लागू होता है जो सत्य को स्वीकार नहीं करते। इन में चौथे क्रम में उल्लिखित अर्थात् अविद्या के कारण जो लोग सत्य को नहीं जानते-मानते, उन्हें यदि विद्या दी जाए, पुरुषार्थ करके वह ज्ञान प्राप्त कर लें तो यह सम्भव है कि वह शिक्षित हो जाने पर सत्यासत्य को जान लेंगे। आज भले ही वे सत्य को स्वीकार नहीं कर रहे तो भी उन्हें शिक्षित करके कोई शिक्षित व ज्ञानी व्यक्ति सत्य का ज्ञान करा सकता है तथा वे कालान्तर में सत्य के ज्ञाता हो सकते हैं। असत्य का परित्याग करके वे सत्याग्रही बन सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रति हमारी सहानुभूति व सहयोग रहेगा तो किसी-न-किसी दिन अवश्य ही असत्यवादियों, असत्यकारियों तथा असत्यमानियों की सूची से पृथक् होने में समुद्यत रहेंगे। शेष तीनों प्रकार के लोगों में से एक भी प्रकार के लोग कभी सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि उनकी विवशताएं हैं, सीमाएं हैं। स्वार्थों, हठों व दुराग्रहों से वे अपना दामन छुड़ाना नहीं चाहते। उन्होंने इनसे स्वयं को बांध रखा है तथा वे उन बन्धनों से तलाक लेने की इच्छा नहीं रखते, न ही प्रयत्न करते हैं। सत्य से परे रहने वाले ऐसे लोगों पर तरस आता है।

कुछ मन को मनाने में लगे रहते हैं,

कुछ तन को सजाने में लगे रहते हैं,

कुछ धन को कमाने में लगे रहते हैं,

सत्य को तो वही लोग समझेंगे कि जो,

कुछ करके दिखाने में लगे रहते हैं।

सत्य के विषय में ईशोपनिषद् १५ में

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितम् मुखम्।

तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

The face of truth is covered with a golden lidunveil, O Pushan (Fosteses), so that we may see the truth and follow it. अर्थात् ''हे प्रभो! संसार की सुवर्णमय चकाचौन्ध के ढ़कने से आपका ठीक-ठीक स्वरूप मेरे लिए ढ़का हुआ है। मेरी आप से प्रार्थना है कि सत्य के दर्शन के लिए सत्य को ढ़कने वाले इस आवरण को हे पूषण! हटा दीजिएगा।'' अमृत अर्थात् सत्य, धर्म के मार्ग में बाधक है हिरण्मय पात्र, भौतिक सुख-समृद्धि की। इन में बहुत आकर्षण है। संसार की चकाचौन्ध में, चमक-दमक में, भौतिक सुख-सुविधाओं में मुग्ध होकर हम भूल जाते हैं कि चमकने वाली प्रत्येक वस्तु स्वर्ण नहीं होती। All that Glitters are not gold. स्वार्थी लोग सत्य को ढका ही रहने देना चाहते हैं। लौकिक कीर्ति, यश, पद, प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा के चक्र में मनुष्य धर्म और सत्य की उपेक्षा करते हुए अनेक झूठ बोलता है, असत्य कार्य करता है। इसे ही महर्षि ने पूर्वोल्लिखित ''अपने प्रयोजन की सिद्धि'' लिखा है।

दीपावली के आस पास पटाखे खूब बिकते हैं। इन्हें बनवाने व बेचने वाले भली भान्ति जानते हैं कि इनका चलाना वैज्ञानिक दृष्टि से हानिकारक है। वायु प्रदूषण इनसे होता है व कोई दुर्घटना भी हो सकती है परन्तु फिर भी वे इन्हें बनाते तथा बेचते हैं। क्यों? धन कमाना ही उनका उद्देश्य रहता है। इसी प्रकार शराब बेचने वाला ठेकेदार शराब बेचता है, धन कमाने के लिए। वह जानता है कि यह पदार्थ पीने वाले के धन, स्वास्थ्य व प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक है परन्तु फिर भी खुले आम इसे बेचता रहता है। यह भी संभव है कि इसकी हानियाँ जानकर स्वयं इसे न पीता हो किन्तु धन के लोभ में इसे बेचता रहता है। मूर्तिपूजा कराने वाला पौराणिक पण्डित जानता है प्राण प्रतिष्ठा के कथित मंत्र बोलकर मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा नहीं कर सकता। परन्तु फिर भी वह यह प्रचार करता है कि इस मूर्ति में अब प्राण आ गए है अर्थात् यह सजीव हो गई है। इसकी पूजा किया करो। वह यह भी जानता है कि मूर्ति ईश्वर नहीं है परन्तु वह मूर्ति की पूजा को ईश्वर की पूजा कहकर धन-सम्पत्ति एकत्रित करता है। उसका अपना स्वार्थ व प्रयोजन है। हिसार के निवासी स्व. सीताराम आर्य ने एक घटना सुनाई थी। उसके अनुसार एक बार हिसार में पौराणिक शास्त्रार्थ महारथी माध्वाचार्य आया था व अपने प्रवचनों में महर्षि दयानन्द के विरुद्ध व मूर्तिपूजा के पक्ष में ही बोलता था। सीताराम जी उसके भाषणोपरान्त उससे बात करने उसके कमरे में गए, जहां वह ठहरा था। सीताराम जी ने उसकी असत्य बातों विषयक वैदिक विचार रखे व पूछा कि आप मूर्तिपूजा के पक्ष में तथा महर्षि दयानन्द के विरुद्ध ही अधिक क्यों बोलते हैं? माध्वाचार्य ने उत्तर में कहा-मैं महर्षि दयानन्द के विरुद्ध जितना अधिक बोलता हूँ, मेरे भक्त मुझे उतनी ही अधिक दक्षिणा देते हैं।''

इसे ही कहते हैं सत्य सोने के ढक्कन से ढ़का है। स्वार्थी लोग उसे ढ़का ही रखना चाहते हैं। इस में उनका निजी प्रयोजन है, स्वार्थ है। सन् 1869 में काशी में ''वेदों में मूर्ति पूजा का आदेश नहीं है,'' इस विषय पर 32 पौराणिक विद्वानों से शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें महर्षि विजयी हुए थे तो पौराणिक पंडितों के मुखिया विशुद्धानन्द ने किसी को कहा था-''दयानन्द कहता तो ठीक है कि वेदों में मूर्ति-पूजा का आदेश नहीं है परन्तु वह यह कह सकता है क्योंकि वह संन्यासी है। हम गृहस्थी ऐसा नहीं कह सकते।''

वितैषणा ही नहीं, पुत्रैषणा व लोकैषणा भी मनुष्य को सत्य से विमुख करती है। आचार्य श्रीराम शर्मा, मथुरा आर्य समाज का प्रधान रहा है। उसने दल बदल कर 'गायत्री परिवार' नामक संस्था बना ली जो आज चल रही है। तब मथुरा आर्य समाज के मन्त्री स्व. प्रेम भिक्षु जी ने उन्हें एक लम्बा पत्र लिखकर इसका कारण पूछा पर श्रीराम शर्मा ने उत्तर न दिया। ''गायत्री परिवार' में उसकी खूब पूजा होने लगी थी व धन सम्पत्ति भी बहुत हो गई। वहाँ जाकर उन्होंने गायत्री की मूर्ति स्थापित व पूजित करा दी। सुधांशु जी 'महाराज' व स्वामी सत्यानन्द का भी लगभग ऐसा ही इतिहास है।

वर्तमान राजनीति का दारुण दारिद्रय यह है कि केवल वोट मांगती है क्योंकि राजनीति में पद, प्रतिष्ठा, सुविधा, अवसर व धन की अपार संभावनाएं हैं। वोट के भिखारी कभी सत्य के पुजारी नहीं हो सकते

(शेष पृष्ठ 6 पर)

आर्य समाज व शिक्षा

ले.-आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय नर्मदापुरम् होशंगाबाद (म.प्र.)

शिक्षा मनुष्य को प्रकृति, समाज व ईश्वर से जोड़ती है और अपने परिप्रेक्ष्य में अपना योगदान देने की क्षमता प्रदान करती है। कहा भी है-''**वंशो द्विधा विद्या जन्म च**' अर्थात् वंश दो प्रकार से चलते हैं, एक जन्म से और दूसरा विद्या से। जब मनुष्य अपने अस्तित्व की पहचान खोकर अपने सोचने समझने की शक्ति को नष्ट करके एक भेड़ की भाँति तथाकथित मैकाले शिक्षा रूपी चरवाहे के द्वारा हाँके जा रहे थे और लुंज-पुंज होकर घुटन में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। शिक्षा जब यशकारक न होकर केवल अर्थकारक बनकर रह गई थी, जिसके संदर्भ में कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में कहा है-'**यस्यागमः केवलं जीविकायै तं ज्ञानं पण्यं वाणिजं वदन्ति**' अर्थात् जब शिक्षा का सम्बन्ध आत्मा से नहीं होता है तो वह ज्ञान केवल जीविका चलाने के लिए बनिये के व्यापार जैसा हो जाता है। दुर्भाग्य यह था कि उचित शिक्षा नहीं मिल रही थी और शिक्षा का बड़ा भयंकर वणिजकरण हो गया था।

परन्तु समाज को उन्नत करने के लिए शिक्षा का प्रचार आवश्यक है। शिक्षा के दो अंग है-1. सत्य ज्ञान की प्राप्ति, 2. उस प्राप्त ज्ञान के अनुरूप अपने जीवन का निर्माण करना। हमारे देश के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन जी कहते हैं-'**भारत सहित सारे संसार के कष्टों का कारण यह है कि शिक्षा का सम्बन्ध नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति न रहकर केवल मस्तिष्क के विकास से रह गया है। यदि शिक्षा में हृदय और आत्मा की अवहेलना है तो उसको पूर्ण नहीं माना जा सकता।**' ज्ञान समझदारी के बिना मूर्खता है, व्यवस्था के बिना व्यर्थ है, दया के बिना दिवानापन है, धर्म के बिना मृत्यु है। महर्षि सुश्रुत भी क्रिया के बिना ज्ञान को अधूरा मानते हैं और सुश्रुत संहिता 4.6 में कहते हैं-

यथा खरश्चन्दनभारवाही
भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य
चार्थेषु मूढाः खरवद्वहन्ति।।

अर्थात् जैसे गधे के ऊपर चन्दन लाद दो तो वह चन्दन की गंध का आनन्द न लेकर केवल भार का अनुभव करता है, वैसे ही बहुत शास्त्र पढ़कर जो अर्थ को नहीं जानता तदनुकूल आचरण नहीं करता, वह भी उसी गधे की भाँति है। कहा भी है-'**यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्**' वही विद्वान् है जो क्रियावान् है। जफर ने भी कहा है-

जिस आदमी में न हो अम्ल और किताब से हो लदा।
जफर हम उस आदमी को तसब्बुर बैल कहते हैं।

इसलिए सच्ची शिक्षा वही है जो शरीर, मन व आत्मा सब को शुद्ध करने वाली हो। फ्रायड भी कहता है-'**जब बच्चा माँ की गोद में अंगूठा चूस रहा होता है तभी से उस पर वे संस्कार पड़ रहे होते हैं जो उसके भावी जीवन का निर्माण करते हैं।**' क्योंकि महान् बनने के लिए माँ की गोद, परिवार का आँगन व समाज का वातावरण उत्तम होने चाहिएं। इसलिए ऋषि दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में माता-पिता व आचार्यरूपी त्रिवेणी में बालक को स्नान करने की बात करते हैं और कहते हैं कि माता उसको सदा ऐसी उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावे।

दयानन्द ने जितने शोषण करने वाले थे उनके विरोध में ही आर्य समाज का आन्दोलन खड़ा किया था। तो कल्पना कीजिए जिसका सम्बन्ध सीधे मानव की उन्नति व अवनति से हो उसके संदर्भ में आर्य समाज कुछ न कहे या न करे ये संभव नहीं है। इसलिए ऋषि दयानन्द जी व आर्य समाज ने शिक्षा में आई विकृतियों को दूर कर सर्वसुलभ बनाने का प्रयत्न किया और ऋषि दयानन्द जी ने अपने जीवन काल में ही कासगंज (एटा), फर्रूखाबाद, दानापुर, काशी आदि में संस्कृत पाठशालाओं का संचालन करवाया।

ऋषि वेदशालाओं में वेदाध्ययन प्रारम्भ करने के पक्षधर थे। जैसे (क) विवाह होने के पूर्व वेदाध्ययन अवश्य करना चाहिए। इन दिनों ब्राह्मण लोगों ने वेदाध्ययन स्वार्थवश नष्ट कर दिया है, सो प्रारम्भ होना चाहिए। (उपदेश मञ्जरी 3,15), (ख) अथर्ववेद में अल्लोपनिषद् करके घुसेड़ दिया है। मतलबी पण्डित लोगों ने नये-नये श्लोक बनवाकर लोगों के मनों में भ्रम डाल दिया है, यह बड़े ही दुःख की बात है। इसलिए ऐसा हो कि स्थान-स्थान पर वेदशालायें हों, उनमें वेदाध्ययन कराया जाये, परीक्षाएं ली जावें अर्थात् वेदाध्ययन को हर प्रकार से उत्तेजना मिले, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। (उ.मं. 3,15) वेद विद्यालय प्रारम्भ करने के लिए ऋषि जी ने राजाओं को प्रेरणा की।

(क) वहाँ से उदयपुर जाने का विचार है। इसलिए कि वेद विद्यालयादि उत्तम कार्यों का प्रबन्ध हो जाये। श्रीमान् महाराजाधिराज जी जो उचित समझें, इस बात पर श्रीमान् आर्यकुल दिवाकर महाशयों (उदयपुराधीश) को लिखें। (ऋ. द.प.वि. 2,581) शाहपुराधीश नाहर सिंह वर्मा को 4.7.1882 को लिखा पत्र)।

ऋषि दयानन्द व आर्य समाज का आर्य विद्यालयों को स्थापित करने का प्रयोजन सदा से रहा है-

(क) आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन कराया जायेगा, वेदोक्त रीति से स्त्री और पुरुषों को सत्य शिक्षा करने में आयेगी। (ऋ.द.प.वि. 2,914; बम्बई आर्य समाज के नियम संख्या 16)।

(ख) प्रत्येक सभासदों को न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त होए, उसमें से आर्य समाज, आर्य विद्यालय तथा आर्य प्रकाश पत्र, इन तीनों के प्रचार के लिये प्रीतिपूर्वक शतांश देवें। अधिक देने से अधिक धर्मफल। इस धन का व्यय इन तीन विषयों में ही होए, अन्यत्र व्यय नहीं किया जाये। (ऋ. द.प.वि. 2,611; बम्बई आर्य समाज के नियम, संख्या 12)।

(ग) सब सज्जन लोगों को विदित हो कि एक भारत सुदशाप्रवर्तक नाम का पत्र सनातन वेदोक्त धर्म विषयक व्याख्यान, नाटक तथा सत्योपदेशों से सुभूषित हो के प्रतिमास निकलता है... विशेष यह है कि जो कुछ बचता है वह संस्कृत और देश की उन्नति में लगाया जाता है। (ऋ. द.प. वि. 2,566-570; विज्ञापन 31.5.1882 को ऋग्वेद भाष्य के टाइटल पर प्रकाशनार्थ)।

परन्तु आर्य विद्यालयों में ऋषि दयानन्द मैकाले की शिक्षा पद्धति के विरोध में थे। वे एक स्वस्थ व श्रेष्ठ शिक्षा व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे, उसका प्रारूप निम्न था:-

1. सबको शिक्षा का अधिकार

आर्षपाठविधि में सबको शिक्षा का समान अधिकार है। योग्यतानुसार प्रत्येक व्यक्ति इच्छानुसार कोई भी शिक्षा प्राप्त कर सकता है। शिक्षा प्राप्ति में बालक, बालिका में कोई भेदभाव नहीं है।

2. शिक्षा सबके लिए अनिवार्य-

आर्षपाठविधि में सबके लिए शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है। निर्धारित आयु के समय प्रत्येक बालक-बालिका को घर छोड़कर गुरुकुल में प्रवेश लेना अनिवार्य है। यदि कोई माता-पिता उन्हें नहीं भेजते तो वे दण्डनीय हैं। राजनियम और समाजनियम के प्रतिबन्ध से यह व्यवस्था लागू होनी चाहिए। शिक्षा एक मुख्य कर्म है और शिक्षा दिलाना माता, पिता, राजा आदि सभी दायित्वपूर्ण लोगों का परम धर्म है।

3. शिक्षा का उद्देश्य

(अभ्युदय, राष्ट्र समृद्धि और मोक्ष प्राप्ति इस शिक्षा का उद्देश्य है) बालकों का शारीरिक, आत्मिक, बौद्धिक विकास करके उन्हें श्रेष्ठ सभ्य, उत्तम नागरिक बनाना। मनुर्भव, देवो भव, ऋषि भव के उत्तरोत्तर विकास के अनुसार उन्नति करते हुए उन्हें मोक्ष का अधिकारी बनाना। साथ ही अपनी रुचि के वर्णों के अनुसार अपने-अपने कर्मों में कुशल प्रशिक्षित नागरिक अपने प्रशिक्षित कार्यों के द्वारा राष्ट्र की उन्नति में योगदान अवश्य करें। कोई अकर्मण्य न रहे, यह वैदिक शिक्षा का संदेश है।

4. धार्मिक शिक्षा अनिवार्य

इस पाठविधि में सभी के लिए धार्मिक अर्थात् नैतिक और आर्ष शास्त्रों की शिक्षा अनिवार्य है। द्विजों के लिए कम से कम एक वेद का सांगोपांग अध्ययन आवश्यक है। महर्षि का मानना है कि सभी लोग विद्वान् तो नहीं हो सकते, किन्तु धर्मात्मा अवश्य हो सकते हैं। धर्मात्मा अर्थात् नैतिक नागरिकों से ही समाज और राष्ट्र में सुव्यवस्था, मर्यादाएँ और सुख-शांति स्थापित रह सकती है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ 4 का शेष-सत्य तथा उसके अवरोधक

पाखण्डी गुरुओं की शरण में जाकर उनके आगे नतमस्तक हो उनका 'आशीर्वाद' लेते हैं। निजी मान्यताओं को परे रखकर प्रत्येक राजनेता इस उस सम्प्रदाय के कार्यक्रमों में जाकर उनके कार्यों की प्रशंसा इसलिए करता है ताकि उनसे वोटों का 'प्रसाद' मिल सके। सत्य सिद्धान्तों से उनका कुछ लेना-देना नहीं होता।

सत्य को छोड़कर असत्य की ओर झुक जाने का दूसरा कारण महर्षि ने हठ लिखा है। व्यक्ति या संगठन का किसी बात के लिए जिद करना अर्थात् हानि-लाभ व सत्य-असत्य का विचार किए बिना अपनी बात पर अड़े रहना या आग्रह करना। इतिहास में ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। वर्तमान में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का व्यवहार हमारे समक्ष है। उसकी शाखाओं में ध्वज के सामने खड़े होकर उसके स्वयं सेवक जो प्रार्थना बोलते हैं, उसके आरंभिक शब्द इस प्रकार है-'नमस्ते सदा वत्सले मातृ भूमे।' अर्थात् हे मातृभूमि! तुम्हें मैं नमस्ते करता हूँ। नमस्ते अभिवादन करने का सार्वदेशिक सर्वश्रेष्ठ व अर्थ की दृष्टि से सही व प्राचीन शब्द है। आधुनिक इतिहास में इसे आर्य समाज ने पुनर्प्रतिष्ठित किया है और अब अभिवादन के लिए दूर-दूर तक प्रचलित हो गया है पर उपरोक्त संघठन वाले लोग परस्पर मिलने पर नमस्ते के स्थान पर नमस्कार शब्द ही बोलते हैं। वे नमस्ते अपनी प्रार्थना में बोलने को ठीक समझते है परन्तु लाख बार समझाने पर भी वे परस्पर मिलने पर नमस्कार ही बोलते हैं। व्याकरण से उन्हें कुछ सरोकार नहीं। उन्हें यह हठ आर्य समाज से स्वयं को पृथक् सिद्ध करने हेतु करना ही है। वास्तविकता यह है कि नमस्कार नमः कार का अर्थ हुआ नमन किया परन्तु नमः अथवा नमस्कार में विधेय और उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती अर्थात् यह नमन व आदर-सत्कार किसका किया जा रहा है, उसका 'नमस्कार' में अभाव है। नमस्ते में प्रयुक्त से इसकी पूर्ति होती है। अतः अभिवादन करते समय नमस्ते शब्द का प्रयोग ही उचित है परन्तु उचित-अनुचित का विचार न करने अपनी बात पर अड़े रहने वाले लोग कभी सत्यनिष्ठ नहीं हो सकते।

तीसरा कारण दुराग्रह भी सत्य के मार्ग में बाधक है। यह दुःख व आग्रह के मेल से बना शब्द है। आग्रह का अर्थ हठ, बल, ज़ोर तथा आवेश है तथा दुः का अर्थ बुरा। बुरा हठ अर्थात् दुराग्रह। आप इसे आज आतंकवाद के रूप में देख सकते हैं। इस्लाम मतानुयायी यह मानकर नर-संहार करना भी पुण्य कार्य समझते हैं कि इससे जन्नत (स्वर्ग) व उसके सुख मिलेंगे। यह धर्म है व सत्य का मार्ग है। हमारी मान्यताएं ही सच्ची है तथा इनको न मानने वाले लोगों की हत्या करना बड़े पुण्य का कार्य है। परस्पर बैठकर संवाद स्थापित करके तर्क व युक्तियों से सत्य धर्म का निर्णय करना उन्हें अभीष्ट नहीं है तथा अपने असत्य विचार को लेकर संसार में अपना राज स्थापित करना चाहते हैं।

ये भी दुराग्रह के उदाहरण मिलते हैं। हर युग में दुराग्रह मिलता है व इसकी चुनौती भी हर युग में दी गई है। गैलीलियों ने जब सिद्ध किया कि पृथ्वी गोल है तो उसे जेल में डाल दिया गया। ब्रूनो को आग में जला दिया गया था। धर्म व राज शक्ति उन पर टूट पड़ी क्योंकि दोनों शक्तियों के पीछे बाईबल का यह दुराग्रह ही था कि धरती चपटी है। मंसूर को सूली पर चढ़ाया गया। सुकरात व दयानन्द को विष देकर मारा गया क्योंकि इनके समय की राजशक्ति या समाज शक्ति का असत्य के मध्य गहरा दुराग्रह रहा। ये सभी बलिदानी सत्याग्रही दुराग्रह की ही भेंट चढ़े थे।

असत्य की ओर झुकने वाले चौथी व अन्तिम प्रकार के लोग वे होते हैं, जो अविद्या से ग्रस्त होते हैं। हमें ऐसे लोगों पर तरस आता है, जो अविद्या अर्थात् अज्ञान के कारण सत्य से दूर होते हैं। उन्हें कभी किसी ने सत्य का बोध नहीं कराया तथा इसी कारण वे असत्य = अज्ञान = अविद्या का शिकार होकर अन्धविश्वासों, पाखंडों आडम्बरों, डोंगों व गुरुडम में फँस जाते हैं। स्वार्थी व चतुर लोग इनका मानसिक, शारीरिक, आर्थिक तथा सामाजिक शोषण करते हैं। ऐसा करना उनके लिए सरल होता है। चतुर लोग भेड़-बकरियों की भान्ति सत्य से अनजान लोगों को हाँक ले जाते हैं क्योंकि तर्क व प्रमाण का नादान लोगों का दूर का भी सम्बन्ध नहीं होता जबकि मनुमहाराज के अनुसार तर्क से धर्म अर्थात् सत्य का अनुसंधान करने वाला व्यक्ति ही धन (सत्य) को जानता है, अन्य नहीं-

यस्तर्केणानुसन्धन्ते स धर्म वेद नेतरः। मनुस्मृति १/१०

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के अष्टम नियम में यह कहा था "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।"

पूर्वोक्त अपने स्वार्थ (प्रयोजन) में लीन, हठी व दुराग्रही लोगों की बजाय हमें अधिक ध्यान, प्रयत्न, समय व साधन उन लोगों को सत्याग्रही बनाने में लगाने चाहिए जो अविद्या के कारण असत्य की ओर झुक जाते हैं क्योंकि उनके सत्य के ग्रहण करने की संभावना शेष तीन प्रकार के लोगों की अपेक्षा अधिक होती है। प्रत्येक आर्य का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने परिचितों अपरिचितों को अज्ञानी न रहने दे क्योंकि अविद्या, अन्याय तथा अभाव-संसार के इन तीन प्रकार के भयङ्कर शत्रुओं में सबसे विकट शत्रु अविद्या या अज्ञान ही है। पतञ्जलि ऋषि के अनुसार अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, इन चार प्रकार के क्लेशों की क्षेत्र = प्रसवभूमि = उत्पत्ति का स्थान है अर्थात् अस्मितादि चारों क्लेश अविद्या की सत्ता से रहते हैं तथा न रहने से नहीं रहते।

अविद्या क्षेत्रमुतरेषां प्रसुप्रत-नुविच्छिन्नोदाराणाम्

-योगदर्शनम् १/४

अतः हमें "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि" करने में प्रयत्न करते रहना चाहिए।

वैक्सीनेशन कैम्प का आयोजन

आर्य समाज बठिंडा द्वारा स्थानीय आर्य माडल सीनियर सैकेंडरी स्कूल में स्वास्थ्य विभाग के सहयोग से प्रधान श्री अश्विनी मोंगा जी एवं प्रोजैक्ट चेयरमैन श्री विनोद गर्ग की देख रेख में 18 वर्ष से अधिक आयु के लोगों के लिये वैक्सीनेशन कैम्प का आयोजन किया गया जिसमें लगभग 150 लोगों को टीका लगाया गया। इस अवसर पर वरिष्ठ उप प्रधान श्री गौरी शंकर, महामंत्री श्री सुरेन्द्र गर्ग, कोषाध्यक्ष श्री दविन्द्र बांसल, श्री जिनेश सिंगला, श्री बृज मेहता, श्री सुरेश ग्रोवर, श्री दीपक गर्ग, श्री प्रदीप कुमार, प्रिंसिपल विपिन गर्ग व अन्य सदस्य उपस्थित रहे। इससे पूर्व पर्यावरण दिवस भी बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर बोलते हुये प्रधान श्री अश्विनी मोंगा जी ने कहा कि वन हमारे जीवन का सबसे कीमती अंग हैं। आज के हालात को देखते हुये पेड़ों का महत्व और भी समझा जा सकता है। कोरोना की इस बीमारी में आक्सीजन लेवल कम होने के पीछे पेड़ों का कम होना भी हो सकता है। उन्होंने कहा कि आज के दिन सिर्फ पौधा लगाने से काम नहीं चलेगा बल्कि इसकी देखभाल भी एक छोटे बच्चे की तरह करनी पड़ती है।

-विपिन गर्ग प्रिंसीपल

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

पृष्ठ 2 का शेष-अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के...

की सफलता का अन्य कोई भी कारण नहीं है, क्योंकि योग-साधना द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार से नित्यानन्द की प्राप्ति और समस्त क्लेशों की निवृत्ति होती है। लौकिक सुख और सुख के साधनों से ऐसी सफलता कभी सम्भव नहीं हैं।

अब हम सारांशत, योग दर्शन की तत्वमीमांसा तथा ज्ञान मीमांसा को समझने का प्रयास करें तो ज्ञात होगा कि योग दर्शन को, सांख्यदर्शन की तत्वमीमांसा स्वीकार है। सांख्य-दर्शन भी इस सृष्टि को प्रकृति एवं पुरुष के योग से निर्मित मानता है, परन्तु योग-दर्शन, सांख्य के प्रतिकूल ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता है और उसे 26वें तत्व के रूप में स्वीकार करता है। योग दर्शन के अनुसार ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण (कर्ता) है और प्रकृति तथा पुरुष उसके उपादान कारण (आधारभूत साधन) हैं। योग ईश्वर को अनादि, अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान मानता है। योग दर्शन के अनुसार आत्मा शरीर विशेष में रहता है, ईश्वर सब में रहता है। आत्मा भोक्ता है और ईश्वर भोग से अलग रहता हैं।

योगदर्शन के मूल सिद्धान्त:-

योगदर्शन के अनुसार मुख्यत: निम्नलिखित सिद्धान्त हैं:-

1. यह सृष्टि, प्रकृति-पुरुष के संयोग से ईश्वर द्वारा निर्मित है। ईश्वर इस सृष्टि का निमित्त कारण है और प्रकृति-पुरुष इसके उपादान कारण या आधारभूत कारण हैं। आगे कहते हैं कि जब प्रकृति-पुरुष का संयोग होता है तो इसका कोई कर्ता अवश्य होना चाहिए, इस दृष्टि से इस सृष्टि का रचयिता/कर्ता ईश्वर है।

2. योग दर्शन में प्रकृति, पुरुष और ईश्वर तीनों मूल तत्व हैं। सांख्य-दर्शन प्रकृति और पुरुष दो मूलतत्व मानता है, जबकि योगदर्शन प्रकृति, पुरुष व ईश्वर को मिलाकर तीन तत्व मानता है। वह ईश्वर को प्रकृति-पुरुष में संयोग कराने वाला मानता है क्योंकि जब कार्य रूप यह सृष्टि है तो उसका कर्ता भी होना चाहिए और यह कर्ता ही ईश्वर है।

3. आत्मा कर्मफल का भोक्ता है और ईश्वर कर्मफल से अलग रहता है। योग के अनुसार प्रत्येक प्राणी का जीवात्मा ही कर्मफल भोगता है, प्राणियों में समान रूप से विद्यमान रहता है, प्रकृति-पुरुष में संयोग कराता है तथा सृष्टि की रचना एवं संहार करता है।

4. मनुष्य प्रकृति-पुरुष और ईश्वर का योग है। सांख्य दर्शन, मनुष्य को प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन) का योग मानता है, परन्तु योग दर्शन के अनुसार मनुष्य में एक तीसरा तत्व (ईश्वर) और होता है। उनके अनुसार ईश्वर सब प्राणियों में समान रूप से विद्यमान रहता है।

5. मनुष्य का विकास प्रकृति, पुरुष और ईश्वर इन तीन तत्वों पर निर्भर करता है।

6. मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है। सांख्य दर्शनानुसार मुक्ति का अर्थ है-दु:ख त्रय से मुक्ति। योग दर्शन के अनुसार मुक्ति की अवस्था में मनुष्य/साधक ईश्वर की प्राप्ति करता है, इसे ही आनन्द या नित्यानन्द की प्राप्ति कहते हैं।

7. मुक्ति के लिए चित्तवृत्तियों का निरोध आवश्यक है। मानवमात्र का चित्त अत्यन्त चंचल होता है, वह बाह्य विषयों की ओर बड़ी तेजी से आकृष्ट होता है, इसी से मनुष्य नाना-प्रकार के क्लेश (दु:ख) भोगता है, अत: क्लेशों से मुक्ति पाने के लिए चित्त की वृत्तियों का निरोध करना अत्यन्तावश्यक है।

8. चित्त की वृत्तियों के निरोध के लिए अष्टांग योग अपनाना या उसकी साधना करना आवश्यक है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों में इसी अष्टांग योग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की विस्तार से चर्चा की है। इसी को विभिन्न विद्वानों ने ''राजयोग'' का नाम दिया है।

9. अष्टांग योग-साधना के लिए नैतिक आचरण आवश्यक है। योग साधना का पहला पद है-यम ''यम'' का अर्थ होता है-मन, वचन और कर्म का संयम। इसके लिए महर्षि पतंजलि ने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के व्रत के पालन को आवश्यक बतलाया है।

''अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:''।

-(पातंजल योगसूत्र, 1/3)

योगक्रिया का दूसरा पद है-नियम। पतंजलि के अनुसार योग साधक को पाँच नियमों का पालन कराना आवश्यक होता है, ये पाँच नियम हैं-

''शौचसन्तोषतप: स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानानि नियमा:!

(1/32)

अर्थात् शौच, सन्तोष, तप:, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। जब तक कोई साधक इन पाँच व्रत व पाँच नियमों को अपने आचरण में नहीं उतारता, तब तक वह साधक योग साधना के आगे के पदों का अनुसरण नहीं कर सकता।

योगदर्शन की ज्ञानमीमांसा:-

योग दर्शन की ज्ञानमीमांसा भी सामान्यत: सांख्य-दर्शन पर ही आधारित है। योग भी वस्तु जगत् के ज्ञान के लिए बाह्य, उपकरण (इन्द्रियों) और आन्तरिक उपकरणों (मन, बुद्धि और अहंकार के समुच्चय. को चित्त की संज्ञा देता है। योगदर्शन के अनुसार मनुष्य को पदार्थ का ज्ञानेन्द्रियों और चित्त के माध्यम से अन्त में आत्मा को प्राप्त होता है। परन्तु उसकी दृष्टि से योगी को यह ज्ञान सीधे इन्द्रियों द्वारा हो जाता है, उसका स्पष्टीकरण है कि योग क्रिया का अन्तिम चरण समाधि की स्थिति में आत्मा का परमात्मा से योग हो जाता है और परमात्मा सर्वज्ञ है। अत: उस स्थिति में मनुष्य/साधक को कुछ जानना शेष नहीं रह जाता, वह सर्वज्ञ हो जाता है।

योग दर्शन के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के साधन:-

सांख्य के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के तीन प्रमाण (साधन) होते हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द या आप्तवचन। योगदर्शन में भी सांख्य के ये तीनों प्रमाण मान्य हैं। उसके अनुसार ज्ञान प्राप्त करने का चौथा साधन योग है और यह वह साधन है, जिसके द्वारा सब कुछ जाना जा सकता है सब कुछ किया जा सकता है।

योग दर्शन के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ:

योग दर्शन में ज्ञान प्राप्त करने की मुख्यत: निम्नलिखित चार विधियाँ हो सकती हैं:-

1. प्रत्यक्ष विधि-यह वह विधि है जिसमें वस्तु का ज्ञान सीधे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। योग के अनुसार इन्द्रियाँ वस्तु के गुण को ग्रहण कर चित्त (मन, अहंकार और बुद्धि) पर पहुँचाती हैं और चित्त यह ज्ञान आत्मा पर पहुँचाता है। दूसरी ओर योग का मानना है कि जब तक चित्त इन्द्रियों को वस्तु विशेष की ओर नहीं लगाता, तब तक इन्द्रियाँ क्रियाशील नहीं होती। सांख्य के अनुसार इन्द्रियाँ, मन, अहंकार, और बुद्धि पुरुष (आत्मा) द्वारा क्रियाशील होते है और योग के अनुसार चित्त (मन, अहंकार, और बुद्धि) स्वयं में बड़ा चंचल होता है और क्रियाशील होता है और यही इन्द्रियों को क्रियाशील करता है। योग की दृष्टि से प्रत्यक्ष विधि पदार्थ ज्ञान प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि है।

2. अनुमान विधि: अनुमान का अर्थ है-किसी पूर्व ज्ञान के पश्चात् होने वाला ज्ञान। इस विधि में विषय के आधार पर किसी हेतु के माध्यम से ज्ञेय विषय का अनुमान लगाया जाता है। आज की आगमन-निगमन और विश्लेषण-संश्लेषण विधियों में अनुमान विधि का ही प्रयोग किया जाता है। जैसे-जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है।

3. शब्द विधि-यहाँ शब्द का अर्थ है-आप्त मनुष्य की वाणी। आप्त मनुष्य उसे कहते हैं जिसे पदार्थ एवं आत्मतत्व का स्पष्ट ज्ञान होता है। शब्द विधि का अर्थ है-आप्त मनुष्यों के मुख से सुनकर अथवा उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना। योग के अनुसार जहाँ प्रत्यक्ष अथवा अनुमान विधि द्वारा ज्ञान प्राप्त न किया जा सके, वहाँ ''शब्द-विधि'' द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। बस सीखने वाले को यह सावधानी बरतनी चाहिए कि यह इस प्रकार प्राप्त ज्ञान को अपने प्रत्यक्ष ज्ञान की कसौटी पर कस कर ही ग्रहण करे।

4. योग विधि-योग के अनुसार ''ज्ञान'' आत्मा का विषय है। प्रत्यक्ष विधि में आत्मा ''ज्ञान'' को इन्द्रियों तथा चित्त (मन, अहंकार तथा बुद्धि) के माध्यम से प्राप्त करती है और अनुमान तथा शब्द विधि में आत्मा, चित्त (मन, अहंकार तथा बुद्धि) के माध्यम से ''ज्ञान'' प्राप्त करती है। योग वह विधि है, जिसमें आत्मा ''ज्ञान'' को सीधे प्राप्त करती है। योग की स्थिति में ज्ञेय और ज्ञाता में भेद नहीं रह जाता, ज्ञाता सब कुछ जान जाता है और सब कुछ करने में समर्थ हो जाता है।

अन्त में, श्रीमद् भगवद्गीता के तृतीय अध्याय के 21वें श्लोक के साथ प्रस्तुत आलेख का समापन किया जाता है-

यद्यदाचरिति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।

स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

अर्थात्

श्रेष्ठपुरुष जिस-जिस कर्म का आचरण करता है उसी-उसी का दूसरे लोग भी आचरण करने लगते हैं। वह जिस बात को प्रमाणभूत (सिद्ध) करता है, उसी कालोक (जन सामान्य) अनुकरण करने लगता है। अत: श्री कृष्ण ने अर्जनु को यह समझाने का प्रयास किया है कि तू अपना कर्म कर।

कोरोना से युद्ध करो, वातावरण शुद्ध करो के संदेश से गायत्री महायज्ञ यात्रा निकाली

आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना द्वारा पांच दिवसीय कोरोना मुक्ति हेतु गायत्री महायज्ञ यात्रा निकाली गई। इस अवसर पर प्रथम चित्र में आर्य समाज के पुरोहित पं. राजेन्द्र व्रत शास्त्री जी मन्त्रोच्चारण द्वारा गायत्री महायज्ञ प्रारम्भ करते हुए तथा चित्र दो में यज्ञ में आहुतियां डालते हुए आर्य समाज के कार्यकारी प्रधान श्री संजीव चड्ढा, कोषाध्यक्ष श्री सुभाष अबरोल, श्री सुरेश चड्ढा एवं अन्य आर्यजन। चित्र तीन में गायत्री महायज्ञ यात्रा के दौरान वेद प्रचार रथ का नगर निवासियों द्वारा भव्य स्वागत किया गया।

आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना द्वारा पांच दिवसीय कोरोना मुक्ति हेतु गायत्री यज्ञ यात्रा निकाली गई जोकि 26 मई दिन बुधवार को शिवाजी नगर लुधियाना के पार्षद श्री इन्द्र अग्रवाल जी की अध्यक्षता में यज्ञ यात्रा का आयोजन किया गया। पहले दिन शिवाजी नगर में यज्ञ यात्रा की प्रभात फेरी निकाली गई जिसमें मोहल्ला वासियों द्वारा भारी उत्साह से गायत्री यज्ञ प्रभात फेरी का स्वागत किया गया। यज्ञ प्रभात फेरी श्री सुरेश चड्ढा जी के घर से होते हुये आर्य समाज दाल बाजार के कार्यकारी प्रधान श्री संजीव चड्ढा जी के पिता श्री मदन मोहन चड्ढा जी के घर पर सम्पन्न हुई और श्री मदन मोहन चड्ढा जी और पूरे परिवार द्वारा यज्ञ की पूर्णाहुति उनके घर पर की गई और प्रात:राश का प्रबन्ध श्री नयन चड्ढा जी द्वारा किया गया।

27 मई दिन वीरवार को शिंगार सिनेमा के पास कॉरपोरेशन से यज्ञ यात्रा शुरू करके पूरे महाराणा रणजीत सिंह पार्क में गई जहां मोहल्ला वासियों ने पुष्प वर्षा और गायत्री महायज्ञ की आहुतियां डाली गई। नगर के पार्षद श्री इन्द्र अग्रवाल जी की अध्यक्षता में सम्पन्न की गई और नाश्ता व जल पान की व्यवस्था भी श्री इन्द्र अग्रवाल जी द्वारा गोयल परिवार के सहयोग से की गई।

28 मई दिन शुक्रवार को कॉरपोरेशन से प्रारम्भ होकर पूरा हरचरण नगर घूमते हुये यज्ञ यात्रा नगर के पार्षद श्री इन्द्र अग्रवाल जी व श्री सुरेन्द्र नागपाल जी के सहयोग के साथ चल रही थी। संगत के लिये नाश्ता और जलपान की व्यवस्था की गई। 29 मई दिन शनिवार को चांद सिनेमा लवकुश पार्क से प्रारम्भ हुई जिसकी अध्यक्षता आर्य समाज दाल बाजार के यज्ञाध्यक्ष अनिल आर्य जी द्वारा की गई। यज्ञ यात्रा फतेहगढ़ शिवपुरी से होते हुये हिमांशु जी के ससुराल द्वारा फतेहगढ मोहल्ला में स्वागत किया गया और शिवपुरी में अनिल आर्य जी के परिवार द्वारा जोर शोर से स्वागत किया गया। गायत्री यज्ञ यात्रा की संगत के लिये जलपान की व्यवस्था श्रीमती रेणु वधवा जी के परिवार द्वारा की गई।

31 मई दिन सोमवार को श्रीराम शरणम् आश्रम नवलखा बाग से यज्ञ यात्रा श्री रामशरणम् आश्रम के सेवक श्री धीरज सहगल व बन्नू बहल जी और संस्था के सभी सदस्यों की अध्यक्षता में नवलखा बाग कालोनी में निकाली गई जो नवलखा कालोनी की सभी गलियों से होते हुये हनुमान मंदिर जहां यात्रा का स्वागत मंदिर कमेटी द्वारा किया गया, से होते हुये वापिस श्री रामशरणम पहुंची। अन्त में पूर्णाहुति श्रीराम शरणम् आश्रम में समूह संगत द्वारा की गई और नाश्ता जलपान की व्यवस्था भी आश्रम के श्रद्धालु सेवकों द्वारा की गई। इस कोरोना मुक्ति हेतु यज्ञ यात्रा में आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना की तरफ से विशेष प्रकार की हवन सामग्री जिसमें 54 प्रकार की जड़ी बूटियां व गाय के देसी घी द्वारा तैयार की गई और यह हवन सामग्री जहां जहां यात्रा निकाली वहां वहां परिवारों में निशुल्क बांटी गई और आर्यजनों ने संदेश दिया कि हवन करने से वातावरण शुद्ध होता है और खतरनाक वायरसों से छुटकारा मिलता है इसलिये सभी का फर्ज है कि सभी मोहल्ला वासी अपने अपने घरों में हवन जरूर करें।

पूरे गायत्री महायज्ञ यात्रा के यज्ञ ब्रह्मा पंडित राजेन्द्रव्रत जी शास्त्री बहुत ही सरल भाव से साथ साथ में यज्ञ की महिमा और मंत्रों का भावार्थ समझा रहे थे। कार्यक्रम को सफल बनाने में पंडित जी के पूरे परिवार धर्मपत्नी कंचनव्रत जी, पुत्री श्रुति और पुत्र अणुव्रत का विशेष योगदान रहा। इस यज्ञ यात्रा को सफल बनाने के लिये प्रधान श्री संत कुमार आर्य, मंत्री श्री सुरेन्द्र टण्डन, कोषाध्यक्ष सुभाष अबरोल, कार्यकारी प्रधान संजीव चड्ढा, रमाकांत महाजन, सुरेश चड्ढा, दिनेश महाजन, सुमित टंडन, इन्द्र कक्कड़, स्त्री आर्य समाज व आर्य वीर दल ने पूर्ण सहयोग दिया।

वेदवाणी
धीर हृदय–गुह में उपासना करते हैं

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम्।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः।।

–ऋक्० १।६५।१

ऋषिः–**पराशरः शाक्त्यः**।। देवता–**अग्निः**।। छन्दः–**द्विपदाविराट्**।।

विनय–मैं तुझे कैसे ढूँढूँ? हे मेरे अग्ने! आत्मन्! तू मुझसे ही छिपकर न जाने कहाँ जा बैठा है, किस गहन गुफा में जा छिपा है? जैसे, जब कोई चोर किसी के पशु को चुरा ले–जाता है और कहीं पहाड़ की गुफा में जा छिपता है तो पशुवाला अपने पशु को घर पर न पाकर ढूँढ मचाने लगता है, उसी तरह जबसे मुझे पता लगा है कि मेरे 'पशु'–मेरी दर्शन–शक्ति–खो गई है तब से मैं हे आत्मन्! तुझे ढूँढने लगा हूँ। तब से मैं जानने लगा हूँ कि मेरी वह दर्शनशक्ति तेरे ही साथ चली गई है और अब वह मुझे तुझसे ही मिल सकती है, अन्य कहीं से नहीं। पर हे आत्मन्! मैं तुझे कहाँ ढूँढूँ? कैसे ढूँढूँ?

कहते हैं कि तू मेरे ही अन्दर मेरी 'हृदय की' कहाने वाली किसी गम्भीर गुफा में छिपा पड़ा है; कहते हैं कि तू वहाँ ही अपने अन्न को, नमस्कार को पाता है और उसे स्वीकार भी करता रहता है; पर फिर भी तू मुझे दर्शन नहीं देता, मिलता नहीं। जो धीर पुरुष होते हैं, जो लगातार यत्न करते जाने वाले ज्ञानी पुरुष होते हैं तथा जो परस्पर मिलकर प्रीति और सेवन करने वाले कर्मशील होते हैं, वे तुझे पदों द्वारा, तेरे पदचिन्हों द्वारा खोजने में लग जाते हैं। वे मन्त्रों के पदों से, तेरी प्राप्ति कराने के साधनरूपी अन्य नाना प्रकार के पदों से, तेरा पीछा करते हैं। संसार के दु:ख–दर्द, भय, पीड़ाओं से जो तेरा संकेत मिलता है उसे वे ध्यान से देखते हैं और प्रतिदिन सुषुप्ति, संध्या, मृत्यु की घटनाओं में जो तेरे पदचिन्ह चमकते हैं, इन्द्रियों में जो तेरे पदचिन्ह पड़े हैं, सब ज्ञान में जो तेरे पदचिन्ह हैं उनसे तेरा अनुगमन करते हैं। इस प्रकार खोजते–खोजते अन्त में ये यजन के अभिलाषी तुझे पा लेते हैं और ये यजनशील लोग मिलकर तेरी उपासना 'यजन' करने लगते हैं।

क्या मैं भी कभी, हे मेरे आत्मन्! तुझे पाकर, 'यजत्र' बनकर, तेरी उपासना में बैठ सकूँगा?

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड् जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**